International Journal of Applied Research 2017; 3(4): 104-105

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(4): 104-105
www.allresearchjournal.com
Received: 16-02-2017
Accepted: 17-03-2017

डॉ. दोलामणिः आर्यः
सहायक–प्राध्यापक, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
डॉ. दोलामणिः आर्यः
सहायक–प्राध्यापक, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सिद्धान्तकौमुदी में काशिका के कतिपय आलोचित सन्दर्भ

डॉ. दोलामणिः आर्यः

प्रस्तावना

विशुद्ध व्याकरण और वेदांग के अतिरिक्त प्राचीनकाल में व्याकरण सुदीर्घकाल से दर्शन, जीवन की दृष्टि, दर्शन के अभिन्न सम्प्रदाय के रूप में स्वीकृत माना जाता रहा है। माधवाचार्य द्वारा स्वरचित सर्वदर्शन–संग्रह में पाणिनि दर्शन को समाहित करना, उक्त प्रतिष्ठित मत को प्रमाणित करता है। भाषा सृष्टि में उपलब्ध अन्यान्य कौतूहलों में से अन्यतम है, जो सदैव भारतीय भाषाविदों के मनोविनोद का विषय रही है। वैयाकरणों का मत है कि वाक्य ही भाषा की वह इकाई है, जिससे बौद्ध अर्थ को श्रोता तक संप्रेषित किया जाता है, वाक्यस्थ पदों तथा वर्गों की स्थिति आत्यन्तिक सत्य नहीं।[1] इस विषय पर वादों में प्राचीनकाल से पर्याप्त तर्क वितर्क देखने में आते हैं। 'पदप्रकृतिः संहिता'[2] पर मीमांसकों का मत है – वाक्य के पूर्व पदों की सत्ता है। जबकि वैयाकरणों का विचार है – वाक्य पदों की प्रकृति है। जैसा कि वाक्यपदीय में कहा गया है – 'पदप्रकृतिभावश्च वृत्तिभेदेन वर्ण्यते। पदानां संहिता योनिः संहिता वा पदाश्रया।' इस प्रकार आदिम काल से भाषा विषयक अध्ययन में पदविभाग का विवेचन चला आ रहा है। पदों की प्रकृति तथा प्रत्यय का विश्लेषण कर, शब्दों का अन्वाख्यान करना व्याकरण के प्रमुख कार्यों में से एक है। यहाँ काशिका का कथन अवधेय है – 'कथमनुशासनम् प्रकृत्यादिविभागकल्पनया सामान्यविशेषवता लक्षणेन।'[3]

अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि आदि आद्य वैयाकरणों का चरम लक्ष्य शब्दान्वख्यान में उपयुक्त सूत्रों का सांगोपांग व्याख्यान प्रस्तुत कर, व्याकरण के सिद्धान्तों का विशद् विवेचन करना है, न कि प्रक्रिया विश्लेषित करना। संस्कृत भाषा के विकासक्रम में स्थिरता तथा पाणिनीयेतर सम्प्रदायों के दुष्प्रभाव को तिरोहित करने के लिये पाणिनि पर आस्था प्रदर्शित करने वाले आचार्यों ने पाणिनीय तन्त्र के रूपसिद्धि प्रक्रिया पक्ष पर ध्यान आकृष्ट किया, जिसका सङ्केत 'व्युत्पन्नरूपसिद्धिवृत्तिरियं काशिका नाम' के रूप में काशिका के प्रारम्भ में होता है। जिसकी अन्तिम प्रचण्ड परिणति सिद्धान्तकौमुदी में देखी जा सकती है, जिसने समस्त पाणिनीयेतर व्याकरणों को अभिभूत कर दिया। सिद्धान्तकौमुदी प्रक्रिया शैली का चरमोत्कर्ष ग्रन्थ है। साथ ही कौमुदी व्याकरण के सिद्धान्तों को अत्यन्त संक्षिप्त एवं सूक्ष्म रीति से प्रस्तुत करती है। 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' उक्ति को चरितार्थ करते हुए कौमुदी में बहुत्र वृत्ति, न्यास, पदमंजरी, धातुवृत्ति इत्यादि के मतों को खण्डित किया गया है। जिसमें से काशिका के कतिपय आलोचित सन्दर्भ इस प्रकार हैं –

निर्जरसिन, अतिजरसिन, निर्जरसैः, अलिजरसैः भट्टोजिदीक्षित ने सुबन्त प्रकरण में काशिकाकार द्वारा उद्धृत इन प्राच्य मत विषयक उदाहरणों को भाष्य विरुद्ध होने के कारण अमान्य घोषित किया। प्रक्रिया के अनुसार 'जरायाः निष्क्रान्तः' विग्रह होने के पश्चात् 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पंचम्याः'[4] वार्त्तिक से समास तथा 'एक विभक्ति चापूर्वनिपाते'[5] सूत्र से उपसर्जन तथा उपसर्जनह्रस्व[6] होकर 'निर्जर' रूप निष्पन्न होता है। तृतीया विभक्ति एकवचन 'टा' प्रत्यय आने पर 'निर्जर+टा' इस अवस्था में पाणिनीय प्रक्रिया के अनुसार युगपत् दो कार्य प्राप्त होते हैं – (1) अदन्तप्रातिपदिक से उत्तर 'टा' को 'इन'[7] ओदश तथा (2) अजादि प्रत्यय बाद में होने के कारण 'जर' शब्द को वैकल्पिक 'जरस्'[8] आदेश। ऐसी परिस्थिति में काशिका के मत में पूर्वविप्रतिषेध से प्रथम 'टा' को 'इन' आदेश होता है तथा 'इन' होने के पश्चात् 'जरायाः जरसन्यतरस्याम्' सूत्र से 'जरस्' आदेश होकर 'निर्जरसिन' रूप निष्पन्न होता है, क्योंकि 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य'[9] परिभाषा अनित्य है। अतः अदन्तत्वाश्रित 'इन' अदन्तत्व का विघाती हो जाता है। परन्तु भाष्य तथा कौमुदी का मत है कि 'इन' की अपेक्षा 'पर' होने के कारण सर्वप्रथम 'जरस्' आदेश ही होता है। इस प्रकार उनके मत में 'निर्जरसा' रूप निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार काशिका के अनुसार तृतीया विभक्ति बहुवचन 'भिस्' के स्थान पर विधीयमान अदन्तत्वाश्रित 'ऐस्' आदेश, अदन्तत्वविघातक 'जरस्' का निमित्त बन जाता है तथा 'निजरसैः' रूप निष्पन्न होता है, वहीं भाष्य के मत में केवल 'निजरैः' रूप ही बनता है।

यहाँ पर दीक्षित का कथन है कि यदि काशिका में वर्णित विप्रतिषेध विषयक मत को स्वीकारते हुए षष्ठी एकवचन 'निर्जर+ङस्' में ङस् के स्थान पर भी 'स्य' आदेश कर दिया जाता है (निर्जर+स्य) तो स्य के अनजादि होने के कारण 'जरायाः' सूत्र से 'जरस्' अप्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में काशिका के उक्त मत में केवल एक 'निर्जरस्य' रूप ही सिद्ध हो पाता है – 'निर्जरसः' नहीं। जबकि षष्ठी एकवचन में 'निर्जरसः' रूप भी इष्ट है। अत एव भाष्य के मत का अनुसरण करते हुए कौमुदी का निष्कर्ष है कि यहाँ पर 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' के अनुसार 'पर' कार्य होता है।

आसनि किं लभे मधूनिः काशिका के अनुसार (अष्टा० 6.1.63) सूत्र पर आसन शब्द के स्थान पर 'आसन्' आदेश होकर उक्त रूप निष्पन्न होता है। यहाँ पर दीक्षित का कथन है। वस्तुतः 'अस्य' के स्थान पर 'आसन्' आदेश होता है। अत काशिका का कथन प्रामादिक है – 'यत्तु आसनशब्दस्यासन्नादेशः इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकम्।'[10] यहाँ दीक्षित का कथन सर्वथा युक्त है क्योंकि 'ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि' मन्त्र पर सायण आदि भाष्यकारों के अनुसार 'आस्य' के स्थान पर आसन् आदेश स्वीकृत है।

विदुषितरा, विदुषीमतरा, विद्वत्तराः काशिका तथा कौमुदी में प्रक्रियागत भेद के कारण उदाहरणों के स्वरूप में अन्तर दृष्ट होता है। काशिका के मत में उगिदन्त नदी संज्ञक शब्दों को घादि प्रत्ययों के बाद में होने पर वैकल्पिक ह्रस्व होता है। इस प्रकार ह्रस्व पक्ष, ह्रस्वाभाव पक्ष तथा काशिकामत सम्मत वैकल्पिक पुंवद्भावपक्ष के कारण उक्त रूप निष्पन्न होते हैं – 'पुंवद्भावोऽप्यत्र पक्षे वक्तव्यः प्रकर्षयोगात् प्राक्स्त्रीत्वस्याविवक्षितत्वाद् वा सिद्धम्'[11] कौमुदी के अनुसार ह्रस्वाभाव पक्ष में पाणिनीय प्रक्रिया के अनुसार ही 'तसिलादिष्वा कृत्वसुचः'[12] सूत्र से नित्य पुंवद्भाव ही प्राप्त होता है। अतः काशिका का वैकल्पिक पुंवद्भाव कथन निर्मूल है। कौमुदी के मत में दो ही रूप होते हैं – विदुषितरा तथा विद्वत्तरा।[13]

विष्किरः शकुनिर्विकरो वाः अष्टाध्यायी तथा भाष्य में प्राप्त 'विष्किरः शकुनौ वा'[14] सूत्रपाठ के स्थान पर काशिका में, भाष्य में प्राप्त वार्त्तिक को किंचित् परिवर्तन कर सूत्र रूप में 'विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा'[15] पढ़ा गया है। यहाँ पर काशिका का मत है सूत्र में 'वा' से ही 'सुट्' आगम वैकल्पिक सिद्ध होने पर भी सूत्र में विकिर ग्रहण से ज्ञापित होता है कि सूत्रस्थ विकिर शब्द का भी विष्किर के समान शकुनि से अन्यत्र अर्थ में प्रयोग नहीं होता। प्रस्तुत प्रसंग में दीक्षित के अनुसार यह मत भाष्य विरोधी होने के कारण उपेक्षणीय है – 'वा वचनेनैव सुड्विकल्पे सिद्धे विकिरग्रहणं तस्यापि शकुनेरन्यत्र प्रयोगो मा भूत् इति वृत्तिः। तन्न, भाष्यविरोधात्।'[16]
वस्तुतः काशिका का मत चिन्त्य है क्योंकि विकिर शब्द का प्रयोग शकुनि से अन्यत्र अर्थ में भी देखा जाता है। जैसे – 'विकिरं वैश्वदेविकम्'[17]। अत एव नागेश ने भी उक्त पाठ को अनार्ष कहा है।[18]

ऊर्जस्वी, ऊर्जस्वलः काशिका के मत में (अष्टा० 5.2.114) सूत्र पर विनि तथा वलच् प्रत्यय के योग में ऊर्ज् शब्द को असुक् आगम निपातित है। इस प्रसंग में दीक्षित का कथन है कि काशिका कृत असुक् आगम निपात चिन्त्य है। क्योंकि ऊर्जस्वती आदि उदाहरणों में वलच् प्रत्यय के अभाव होने पर वलस् सन्नियोग शिष्ट असुक् आगम का भी अभाव हो जाएगा, ऐसी स्थिति में 'ऊर्जस्वती' की सिद्धि के लिये 'ऊर्जस्' सकारान्त प्रातिपदिक आवश्यक इष्ट है ही, अत एव उक्त सूत्र में केवल विनि तथा वलच् प्रत्यय का ही निपातन किया गया है, न कि असुक् का भी 'ऊर्जोऽसुगामः इति वृत्तिस्तु चिन्त्या, ऊर्जस्वतीः इतिवदसुन्नन्तत्वेनैवोपत्तेः।'[19]

पचेलिमा माषाः, भिदेलिमानि काष्ठानिः काशिका में उक्त उदाहरणों में प्रयुक्त 'केलिमर्' प्रत्यय को कर्मकर्ता में इष्ट है, प्रतिपादित किया है। परन्तु भाष्य में इस प्रकार की चर्चा न होने के कारण दीक्षित काशिका के मत को भाष्य विरुद्ध कह दिया – 'वृत्तिकारस्तु कर्मकर्तरिचायमिष्यते इत्याह। तद्भाष्यविरुद्धम्।'[20]

उदासारिण्यः, प्रत्यासारिण्यः काशिकाकार 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'[21] सूत्र में पुनर्गृहीत सुप् का प्रयोजन सिद्ध करते हुए कहते हैं – 'सुपीति वर्तमाने पुनः सुब्ग्रहणमुपसर्गनिवृत्यर्थम्'[22]। इस प्रकार उपसर्ग भिन्न उपपद होने पर ही उक्त सूत्र में णिनि प्रत्यय का विधान किया गया है। अतः काशिका के मत में उक्त उदाहरणों की सिद्धि के लिये 'उत्प्रतिभ्यामाङि सर्तेरुपसंख्यानम्' वार्त्तिक आवश्यक हो जाता है। परन्तु भाष्य का मत इससे सर्वथा विपरीत है। भाष्य के अनुसार 'सुपिस्थः'[23] सूत्र में पठित 'सुप्' का सम्बन्ध उपसर्ग के साथ नहीं है। अत एव आचार्य पाणिनि को (अष्टा० 3.2.78) सूत्र पर पुनः सुप् ग्रहण करना आवश्यक हो गया, क्योंकि यहाँ सोपसर्ग उपपद से भी धातु से णिनि प्रत्यय इष्ट है। इस प्रकार काशिका के उक्त उदाहरण वार्त्तिक के बिना भी निष्पन्न हो जाते हैं – 'इह वृत्तिकारेणोपसर्गभिन्न एव सुपि णिनिरिति व्याख्याय उत्प्रतिभ्यामाङि सर्तेरुपसंख्यानम्' इति पठितम्। हरदत्तमाधवादिभिश्च तदेवानुसृतम्। एतच्च भाष्यविरोधादुपेक्ष्यम्।'[24] वस्तुतः काशिकाकार का मत चिन्त्य प्रतीत होता है, क्योंकि सोपसर्ग धातुओं के अनेक उदाहरण प्रयोग में दृष्ट हैं। जैसा कि दीक्षित ने स्पष्ट किया है – 'प्रसिद्धश्चोपसर्गेऽपि णिनिः। स बभूवोपजीविनाम्, अनुयायिवर्गः, पतत्यधो धाम विसारि, न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः इत्यादौ।'
इत्यादि शतशः सन्दर्भ सिद्धान्तकौमुदी में सूक्ष्म रीति से विश्लेषण किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वाक्य० 1.74
2. ऋ०प्रा० 2.1
3. अथशब्दानुशासनम्, पर काशिका
4. का० 2.2.18 पर वार्त्तिक
5. पा० 1.2.44
6. पा० 1.2.48
7. पा० 7.1.12
8. पा० 7.2.101
9. परि० 85
10. सि०कौ० 228
11. का० 6.3.45
12. अष्टा० 6.3.35
13. सि०कौ० 987
14. पा० 6.1.150
15. का० 6.1.150
16. सि०कौ० 1065
17. बालमनोरमा, 1065
18. महा० 6.1.150 पर उद्योत
19. सि०कौ०, 1921
20. पा० 3.1.96 पर सि०कौ०
21. पा० 3.2.78
22. का० 3.2.78
23. पा० 3.2.41
24. सि०कौ० 2988